॥ ॐ ॥

भूमिका

प्रभु आश्रित

श्री पूज्य महात्मा जी महाराज ने अपने पवित्र उपदेश में दिनांक ३-४-६० की प्रातः को यजुर्वेद यज्ञ की पूर्णाहुति पर जो विचार मानव जीवन के उत्थान और कल्याण के सुगम साधन यज्ञ भवन, जवाहर नगर में प्रकट किए, उनको श्री हरवंश लाल जी सैहगल ने लेखबद्ध उर्दू में हमें प्रदान किया जिसको हिंदी भाषा में लिख कर जनता जनार्दन के हितार्थ छपवाया जा रहा है। यह साधारण ट्रैक्ट न समझें, इसके अन्दर वह हीरे मोती भरे हैं जो अन्यत्र खोज करने से भी न मिलेंगे। अतः बड़े प्रेम और चाव के साथ इसका अध्ययन करें और जीवन में घटा कर सुगन्धित पुष्प की भान्ति विकसित होवें। भगवान् हम पर कृपा करें। कि हमारा जीवन सफल जीवन हो।

विनीतः- सत्य भूषण आचार्य

अधिष्ठाता—

वैदिक भक्ति साधन आश्रम

रोहतक—२३-४-६०



आदरणीय महानुभावों और पूज्य माताओ !

आज परमेश्वर की अपार कृपा से यजुर्वेद का यज्ञ समाप्त हुआ। जितने भी यज्ञ, तप, दान सत्सङ्गादि हैं, इन सब धर्म का ध्येय यही है कि हमारा दृष्टि कोण बदल जाए।

हमारा दृष्टि कोण दो के आधीन है, एक बुद्धि के और दूसरा मन के। जिसके दो स्वामी हों, उस बेचारे की क्या गति होती है। एक स्वामी ने आज्ञा की कि अमुक कार्य कर आओ। जा रहा था, दूसरा स्वामी मिल गया, उस ने और कार्य बता दिया। भृत्य बेशक ईमानदार है पर बे समझ है। उसे ज्ञान नहीं कि कौनसा आवश्यक कार्य है। ऐसे ही पत्नी ने एक काम बताया, पति आया उसने कहा कि अमुक कार्य कर आओ। पहले को जोड़ दिया, दूसरे का करने लगा। दोनों को प्रसन्न नहीं रख सकता। अङ्गरेजी में कहा हैः—

To please every body is to please nows

अर्थात् जो सब को प्रसन्न करना चाहता है, वह किसी को भी प्रसन्न नहीं कर सकता।

एक स्वामी

इसलिए हमारा वास्तविक स्वामी एक परम पिता परमात्मा है। उस की आज्ञा पालन ही परम मानीय है, कर्म होगा ज्ञान से। उसकी आज्ञा क्या है इसका ज्ञान हो। इस ज्ञान को प्रभु ने हम पर अपनी पवित्र वाणी ऋग्वेद द्वारा किया ताकि उसके अनुसार कर्म करें।

कैसे कर्म करें, यह विधि यजुर्वेद बताता है। यजुर्वेद कर्म काण्ड का वेद है वेद है। ज्ञान से जान कर कर्म करने का आदेश मिला। पदार्थ का ज्ञान पहले होगा तो तभी उससे लाभ उठा सकेंगे।

इसलिए ब्रह्मचारी २५ वर्ष तक कोई और कोई नहीं करता केवल ज्ञान का सम्पादन करता है। समस्त संसार का ज्ञान कर्म करने के लिए है। यदि वैदिक सीखें और रोगियों को निरोग नहीं किया, लोगों का कल्याण नहीं किया तो सब ज्ञान दब जायगा। विकालत पास की परन्तु प्रैक्टिस नहीं की तो सब भूल जायगा। तो इससे निश्चय कि हमारा ज्ञान कर्म करने के लिए है और कर्म हमारा सुख भोगने के लिए है।

इच्छा तो सुख भोगने की है परन्तु सुख की प्राप्ति

हमारे प्रभु के हाथ में है अपने आप हम सुख नहीं भोग सकते। यदि सुख हमारे साथ आता तो नव जात शिशु लिखाई अवस्था में न आता जो अपनी आवश्यकता की पूर्ति और सुख के लिए अपनी माता पर निर्भर है, तो सुख हमारी माता के हाथ में है। हमारी सब की माता जगत जननी है, उसके हाथ में हमारा सुख है। जो माता सब सुखों का धाम और आनन्द की सागर महान और मूल स्रोत है। इसलिए सर्व प्रथम भक्त ने प्रार्थना की कि भगवान्। कि मेरा सुख तेरे अधीन है, तेरे पास है पर ज्यों ज्यों ज्ञान बढ़ा तब कहा कि मेरा सुख ही तू है।

उदाहरण

एक राजा ने नुमायश लगाई। राजधानी के समस्त कला कौशल, उद्योग, आर्ट आदि की प्रदर्शनी की और चहूं ओर घोषणा करदी कि प्रत्येक व्यक्ति बिना टिकट प्रदर्शनी को देख सकता है और जो भी वस्तु उसे भावे, उस पर हाथ लगा दो और बिना रोक टोक उठा कर ले जाओ। राजा स्वयं बाहर द्वार पर बैठकर लोगों को भिन्न भिन्न प्रकार की वस्तुएं ले जाते देखता है और प्रसन्न होता है, एक व्यक्ति सारी प्रदर्शनी घूमा, प्रत्येक

वस्तु को ध्यान से देखा, ऐसा प्रतीत होता था कि उसे पसंदता सब हैं, परन्तु उसने हाथ किसी पर न लगाया और न ही किसी वस्तु को उठाया। रिक्त हस्त प्रदर्शनी से निकला. राजा ने देखा खाली हाथ जा रहा है। पूछा क्या प्रदर्शनी देखी ? कहा, हां देखी। तो क्या कोई वस्तु पसंद नहीं आई, कहा नहीं सब ही पसंद आई परन्तु मुझे यह नहीं चाहिये। राजा ने पूछा तो क्या चाहिए, उसने कहा, जिसकी मुझे आवश्यकता है यदि उसे हाथ लगादूं तो दे दोगे। राजा ने कहा, हां। तो उस व्यक्ति ने राजा को हाथ लगा दिया, राजा उसका हो गया। जो सब स्वामी था. जब उसने स्वामी को ही वरलिया तो सब वस्तुओं का वह स्वामी वन गया। यह अन्त का ज्ञान है।

आत्मा को ज्ञान चाहिये। सब ज्ञान, बल, धन का स्वामी अनादि अक्षय प्रभु है। इस लिए साधक कहता है कि मेरा ज्ञान, धन, बल सर्वस्व तू ही है। तेरे बिना मुझे और किसी वस्तु की कामना नहीं, उसे लेकर मैं क्या करूं ?

भक्त ने कहा मेरी सब इन्द्रियां वायु के समान चञ्चल हैं। वेद ने उत्तर दिया कि तुम ज्ञान का उपार्जन करो

और मन की चञ्चलता से रहित होकर श्रेष्ठतम कर्म करो। "प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मणे"।

मिट्टी से लथपथ पदार्थ को साबुन मलकर साफ कर देते हैं। जब बरतन को माञ्जा जाता है तो उसमें स्वच्छता आती है।

हमारे कर्म दो भागों में विभक्त हो गए, एक अन्दर एक बाहर। एक घर दूसरा बाजार। यदि बाजार को घर में ले आते हैं तो व्यापार हो गया धर्म न रहा। हमारा घर है धर्म। व्यापार हमें चञ्चल बनाता है, घर में आकर भी उसके चिन्तन से विश्राम नहीं मिलता। हमारा धर्म बाजार में कार्य व्यवहार में चला जाए। यह दृष्टि कोण बदल जाए। जैसे घर में सब बराबर होते हैं; एक दूसरे के प्रति स्नेह, प्रेम, आदर, सहानुभूति और त्याग होता है, ऐसे ही यदि बाहर भी हम सब से ऐसा वर्ताव करें तो किसी से ठगी न कर सकेंगे। ऐसा दृष्टि कोण बनाना है।

तीन प्रकार का दृष्टि कोण

दृष्टि कोण तीन प्रकार का है, पहिला दृष्टि कोण है प्राकृतिक वा स्वभाविक जो सत्व, रजस्, तमस् से भरा

हुआ है ।

दूसरा दृष्टि कोण है साधनिक। सत्व, रजस्, तो हैं परन्तु तम और रज को त्यागना है और सत् का ग्रहण करना है साधनिक बुद्धि में सत; रज, तम की साधना करनी पड़ती हैं। कभी तम को दबा कर सत् का अनुष्ठान करना पड़ता है तो कभी रज को दबा कर और कभी सत् को दबा कर रज को अपनाना पड़ता है। इसका अभ्यास कई प्रकार से किया जाता है। जैसे नाना प्रकार का भोजन सामने आया, साधक सब पदार्थ को मिला कर खाता है कि भिन्न भिन्न स्वाद न आए।

तीसरा दृष्टि कोण है नैतिक- यह रज और तम से ऊपर केवल सात्विक है।

दृष्टि कोण कौन बनाता है:—

तीनों प्रकार के दृष्टि कोण बनाती है बुद्धि! बुद्धि का महत्त्व परम महान है। यह कैसे बने? यर बनेगी माज्जने से। जैसे मैला बरतन माज्जने से चमकता है बुद्धि को माज्जने के कई साधन हैं, यम, निलम, जप, तप, दान, यज्ञ, निष्काम, योगाभ्यास सब बुद्धि को

माञ्जने के लिए है ।

बुद्धि सात प्रकार की है

पहली बुद्धि जो अन्तः करण के ऊपर तैरती है, यह व्यवहारिक या स्वाभाविक बुद्धि है जिस में धर्माधर्म का कुछ पता नहीं चलता । कर्त्तव्य जान पाना कठिन है । इसे मान्जा तो

दूसरी बुद्धि सुबुद्धि हो गई । इसमें धर्माधर्म में पहचान तो कर सकता है, विवेक तो कर सकता है परन्तु उस पर आचरण नहीं कर पाता ।

फिर सत्सङ्गों में जा जाकर और मान्जा तो फिर

तीसरी धारणावती मेधावी बुद्धि बन गई, यह कल्याणकारी प्रभु के गुण, कर्म, स्वभाव को धारण करती है पर आचरण में अब भी गुण नहीं आते । इसे फिर मान्जा तो

चौथी बुद्धि सुमेधा प्रकार की हो गई । अब सब कार्य ज्ञानानुसार ठीक ठीक होते हैं । इतने तक मै वास्तविक रूप में धर्मात्मा तो बन गया परन्तु परमेश्वर के दर्शन नहीं कर सकता । इसलिए बुद्धि को और मान्जने की ज़रुरत है । और मान्जा तो वह बुद्धि बनी जिससे परमेश्वर का साक्षात्कार होता है ।

इस पांचवीं बुद्धि का नाम है प्रज्ञा बुद्धि। इसमें सच्चा यथार्थ ज्ञान अन्दर से उपजेगा, जागेगा और अपने दोषों पर विजय प्राप्त कर सकेंगे।

पर इस पर भी सन्तुष्ट नहीं होता, बस नहीं करती और आगे चलना है, इसलिए कई मान्जा तो

छट्टी प्रकार की प्रतिभा बुद्धि बन गई। यह अन्तरात्मा का ज्ञान करायगी, जिसे Intuistion (प्रकार कहते हैं।

अभी मजिल और आनी है, लक्ष्य आगे है और माज्जना बाकी है, योगाभ्यास की भट्टी से तपकर कहीं

जा कर बनेगी, इस बुद्धि का नाम ऋतंभरा बु

यह अन्तिम प्रकार बुद्धि है, यह बुद्धि की पराकाष्ठा है, इसकी प्राप्ति के लिए ऋषि, मुनि, योगी, तपस्वी-धारणा ध्यान और समाधी की मंज़लें तय करते है। ऋतंभरा बुद्धि के होने पर मनुष्य को अन्दर से ज्ञान उत्पन्न होता है और वह सच्चा विद्वान बन जाता है।

आजकल शब्द के ज्ञान रखने वाले को विद्वान कहते हैं। पर वह वास्तव में विद्वान नहीं।

अब स्पष्ट हो गया कि जैसी बुद्धि होगी वैसा दृष्टि कोण बनेगा और उसके लिए निरन्तर अभ्यास की

आवश्यकता है ।

नित्य प्रति प्रभु के दरबार में उपस्थित होकर अपनी साधना और आराधना में श्रद्धा पूर्वक निरन्तर लगे रहो। यह पंक्ति में लगना है, *Que* (क्यू) में खड़ा होना है। पंक्ति को स्वयं अथवा किसी के बहकाने से मत छोड़ो और पंक्ति में अपनी जगह से न हिलो। तब और तब कभी किसी न किसी समय एक सुन्दर दिनके अनुपम प्रकाश में अपनी बारी अवश्य आजायगी, जब टिकट मिल जायगी, लक्ष्य की प्राप्ति हो जायगी। सब कर्त्तव्य पूर्ण हो कर प्यारे प्रभु का साक्षात कार हो जावेगा।

देखो, कभी पंक्ति से नहीं हिलना। यह पाशविक वृत्तियां हमें पंक्ति में नहीं ठहरने देतीं, पथ भ्रष्ट कर देती हैं, असल मार्ग से हटा कर कुमार्ग पर डाल देती हैं। देखो! पशु कभी कतार में नहीं चलता इससे सावधान रहना चाहिए।

पासपोर्ट की उपमा

अपनी नगरी में रहने के लिए पास्पोर्ट की आवश्यकता नहीं। परन्तु विदेश में जाने के लिए पास्पोर्ट अनिवार्य है। पासपोर्ट बनवाने के लिए विदेश यात्री को प्रार्थना पत्र देना होगा अपने राज्य की सरकार को। वह उस को

वह उस को पुलिस विभाग से जाञ्च पड़ताल करायगी। पुलिस उसके कर्मों और चरित्र को जानती है। यदि उस का नाम दस नम्बर के रजिस्टर में है तो जब तक वहां से उसका नाम खारिज नहीं होता पास्पोर्ट नहीं बन सकता फिर पास्पोर्ट बनवाने के लिए फोटो (चित्र) की ज़रूरत है यह क्रियांए जैसे इस भौत्तिक माया के रांज्य में आवश्यक हैं वैसे ही आध्यात्मिक साम्राज्य में भी आवश्यक हैं।

वहां का राजा इन्द्र हमारे कर्मों की जाञ्चे पड़ताल की साक्षा और चित्र अपने नियुक्त देवों से मांगता है। यह पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश देव सब उसके गुप्तचर चित्रकार हैं। जिस जिस देव के प्रति हमारा जैसा जैसा कर्म होता है उसके अनुसार वैसा वैसा कारटून बन जाता है, उसके अनुमार प्रमाण पत्र मिलता है और वैसा ही भावी जन्जीवन की पासपोर्ट बन जाता है, और तब जब नया शरीर बनने लगता है तो श्रेष्ठ कर्म न होने पर देवता देवता अपने देवत्व या सात्विक भाग देने से इन्कार कर देते हैं तो शरीर में तम और रज के परमाणु घुसे रहते हैं। जैसे सूर्य ने कहा कि इसको प्रकाश तो मिलना चाहिये परन्तु प्रकाश से लाभ न ले सकेगा। क्या हुआ? सात्विक भाग के नहीं मिला,

केवल तामसिक और राजसिक भाग ही पल्ले में पड़ा।

अब सावधान हों; प्रभु परामर्शदाता देवताओं को रिझाएं. उनको अपने अनुकूल करें, वह हमें अपनी मित्रता मेंलें जिस से वह साक्षी दे सकें कि हम निष्पाप हैं और फिर तब जाकर परलोक का पासपोर्ट बन जाएगा।

पाप का कारण

पाप तो कराने वाला हमारा भोग है और भोग है हमारे किए कर्म का फल यदि पाप करने में सुख की प्रतीति न हो तो फिर हमारी पाप करने में रुचि न होगी और तभी पाप न कर सकेंगे अर्थात् निष्पाप हो जांयगे। इस लिए ऊपर कहा कि अपना दृष्टि कोण बदलो। दृष्टि कोण बदलने के लिए व्यवहारिक बुद्धि को मान्ज मान्ज कर आतम्मरातक ले जाना होगा।

यह सांसारिक बुद्धि ऊपर तैरने वाली है। सब कामों में व्यवहारिक बुद्धि अन्तः करण में तैरती है जैसे तृण जल में तैरता है। जब टाइफाइड(**Typhoid**) वाले रोगी का कोई अंग मारा गया तो फिर कोई उपचार लाभ नहीं पहुंच सकता इसलिए सावधान रहना चाहिये कि कहीं ऐसा

ज्वर न आजाए जो हमें अंग हीन करदे। उससे बचने की विधि वेद भगवान् बतलाता है :-

"तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः" ऐ मानव! तू संसार के पदार्थों को त्याग भाव से भोग। सभी संसार में भोग की लालसा लेकर फसें हैं। हमें विष्टा से घृणा है, इस लिए उससे बचते हैं परन्तु ग्राम की सूरनी को उसमें रुचि है, घृणा नहीं। मक्खी, मच्छर, को गन्दगी से घृणा नहीं।

सुख के कर्म

शरीर की निरोगता, मानसिक शान्ति, और धन, अन्न सम्पन्नता सुख के साधन हैं। हमारा सुख प्रभु के हाथ में है जो सब सुखों का धाम है। यह सुख किन कर्मों के फल स्वरूप ईश्वर से मिलेंगे अर्थात् वह सम्पदाएं मिलेंगी।

वह कर्म बनेंगे दान से। कैसा दान करें। परमेश्वर को सब से श्रेष्ठ दान प्राणों का दान है। उस प्राण दाता के निमित्त जब जब तक उसके दिए प्राण अर्पण न हों, हमें सुख नहीं मिल सकता प्राणों से और काम नहीं लेना

चाहिए। प्रश्न यह है कि कितना समय अर्पण करें। दिन रात के २४ घण्टों में हम २१६०० श्वासों का प्रयोग करते हैं, उनका बारहवां भाग अर्थात् दो घण्टे निरन्तर प्रति दिवस उसकी आराधना उपासना में अर्पित करने चाहिये। कौन सा समय दें। यदि धन कमाने का समय दिया तो धन मिलेगा। परन्तु शान्ति नहीं मिलेगी और कोई फालतू अथवा किसी कार्य के समय का त्याग करके प्रभु के अर्पण किया तो उन कार्यों की की बुद्धि तो होगी परन्तु सुख शान्ति नहीं मिलेगी। उस के लिए विश्राम का ही समय देना होगा। यह है प्रातः काल का संधि काल। संधि का अर्थ है मिला देने वाला जो प्रभु से मिलाप करादे। इस लिए सर्व प्रथम मौन भरी प्रभात की अमृत बेला में निद्रा और आलस्य का त्याग कर प्रति दिवस दो घण्टा उसके साथ सुसंगत हों। उस समय जब नन्हा बच्चा माता को रोकर जगा देता है तो उसे माता दूध अमृत का पान कराती है, हमें भी अपनी जगत् जननी माता को जगाता है ब्रह्म रस के अमृत के रसास्वादन के लिए जो ब्रह्म मुहूर्ति के समय उपलब्ध होता है।

महात्मा गान्धी का उदाहरण

महा पुरुष समय की पाबन्दी करते हैं। कोई सज्जन

दूर से महात्मा गान्धी के पास आया कि ५ मिनट कृपया प्रदान करें। महात्मा जी ने स्वीकार कर लिया। उस सज्जन ने भूमिका में ही ५ मिनट व्यय कर दिए, पुनः ५ मिनट की और आज्ञा मांगी परन्तु इस अवधि में भी बात अधूरी रही तो और समय लेकर निवृत हुआ; इतने में महात्मा जी के भोजन को समय बीत गया। सेवक भोजन लेकर आया तो उन्हों ने कहा कि अब तो और कार्य का समय है। यदि भोजन किया तो वह कार्य रह जायगा। निश्चित समय को निश्चित कार्य में लगाने का वह महत्त्व जानते थे।

आगे चल कर जब महात्मा गांधी लार्ड इरविन के साथ संधि कर रहे थे तो चन्द मिन्टो का काम बाकी रह गया था तब महात्मा गांधी नें वार्तालाप वहीं स्थगित कर दी क्यों कि उन का सायं काल का प्रार्थना का समय आ गया था। इतना महत्व पूर्ण राष्ट्र के भाग्य का प्रश्न था तो भी प्रार्थना के समय और कोई काम नही किया तत्पश्चात निवृत हो कर रात्री को दो बजे डा० अन्सारी की कोठी पर आए और आकर कांग्रेस नेताओं को सारा वृतांत सुनाया उस के बाद चरखा कातना रह गया था चरखा काता और फिर सो गए। डा० अन्सारी ने

लोगों को कह दिया कि प्रातः काल निश्चित समय पर प्रार्थना नहीं होगी परन्तु महात्मा गांधी ठीक पांच बजे प्रार्थना स्थल पर पहुंचे और नित्य की भांति प्रार्थना हुई। डा० अनसारी ने कहा कि हम ने लोगों को कह दिया था कि आज इस समय प्रार्थना नहीं सकेगी क्योंकि आप देर से सोए थे, इस पर महात्मा जी ने फरमाया कि भगवान की प्रार्थना तो मेरे जीवन का प्राण है इसे मैं छोड़ कर कैसे जीवित रह सकता हूं। यह है परमात्मा के प्रति समपर्ण की भावना। काश हमें भी ऐसा ठकोरा लग जावे।

धन दान

वेद भगवान की आज्ञा है कि त्याग भाव से प्रभु के लिए ऐश्वर्यों का उपयोग करें, और दान द्वारा उन ऐश्वर्यों को बढ़ाए हमारी दस इन्द्रियां हैं एक प्रधान इन्द्रिय द्वारा हम धन कमाते हैं, इस लिए आज्ञा हुई कि शीश निकालो। दसवां भाग निकालने वाला ही त्याग पूर्वक भोगता है; उससे निकलने वाले की शक्ति दस गुणा हो जावेगी। रुपये के दान में दस गुणा शक्ति आ जावेगी, इस से एश्वर्य बढ़ेगा।

अन्न दान

शरीर के लिय चाहिय अन्न। हम अन्न के मुहताज नहीं उसके अन्न का छटा भाग कीड़े मकोड़े, दीन हीन कंगाल. कोढ़ी चंडाल आदि को दें, उन का भाग निश्चित कर रखें और नियम अनुकूल अपने भोग से छटा भाग निकालें। प्राण, अन्न और धन का त्याग अवश्य करें। इन सब में से स्वार्थ का त्याग तो हुवा परन्तु, आसक्ति और अहंकार का त्याग न किया तो क्या बना क्योंकि मनुष्य तो आसक्ति और स्वार्थ से बन्धा हुआ है और अहंकार के कारण उसका पतन होता है।

अहंकार का रूप

जो विषयों में रमण नहीं करता वह नर है सब कर्म बन्धन में डालने वाले हैं पर यज्ञ कर्म ही केवल एक एसा कर्म है जो नहीं बांधता, निर्लेप कर देता है। अहंकार कई रूप धारण करता है, एक देवी हस्पताल में बहुत बीमार पड़ी थी, आचार्य जी और मैं उसे देखने गए, वह देवी बहुत विदूषी थी, जप तप आदि में नित्य कर्म में प्रवीण। जब हम पहुंचे तब हमें मिलते ही कहने

लगी कि महात्मा जी ! सात वर्ष की आयु से ही मैं जप यज्ञ आदि श्रेष्ट कर्मों में लगी हुई हूं, फिर भी मुझे यह कष्ट आगया इसका क्या कारण है, मैंने समझा कि अहंकार से इस का अन्तः करण शुद्ध नहीं हुआ, मैंने कहा धन्यवाद करो कि दयालु परमेश्वर ने तुम्हारी सेवा के लिय पति, आज्ञाकारी संतान, सभी परिवार, नौकर चाकर, दूध, धन, मकान, सवारी सब कुछ दे रखा है कि ऐसे साधनों से तेरा यह पाप कर्म का फल सुगमता से कर रहा है, यह सुभीताए न होती तो फिर यह कष्ट कितना दुख प्रद होता और कैसे भुगतता, इसे सोचो।

सत्ययुग के अन्त में महाराज हरिश्चन्द्र को गर्व हो गया कि मैं बहुत सत्यवादी हूं। रात को स्वप्न में उस की परीक्षा हुई। पुण्य कर्मों और दान का अहंकार वा अभिमान दोनों लोकों में साथ जाता है, परन्तु बल और धन का गव यहीं नष्ट हो जाता है, टूट जाता है इसलिये स्वार्थ के साथ आसक्ति का त्याग करो और अहंकार को समर्पण करो जो बन्धन में डालने और गिराने वाले हैं।

बेद कहता है "मा गृधः कस्य स्वधनम्" किसी के धन पर कुदृष्टि मत रखो, इस से दृष्टि गृध्र के समान नीचे हो जाती है, इसलिये लोभ की दृष्टि से किसी के

भन को मत देखो, ऐसा जानते और मानते हुवे. बुद्धि को मांजो जब यह सुमेधा हो जावेगी तब वह मन को बदल देगी मन और बुद्धि के बदलने से हमारा दृष्टि कोण बदल कर ऊंचा हो जावेगा इस लिए यज्ञ, तप, दान सत्संग आदि में निरंतर विधि पूर्वक श्रद्धा और विश्वास के साथ अभ्यास में लगा रहे, यही पंक्ति में लगना है, तब यह कभी नहीं हो सकता कि परमेश्वर के दरबार में लगे और फिर दुखी या हाजतमन्द (पराधीन) रहे, बच्चा की न्याई सरल शुद्ध हृदय वाला बना रहे जैसे माता ने बच्चे को रेशमी वस्त्र पहना दिया परन्तु बच्चे ने जाकर अपने पेशाब से कीचड़ बनाकर उन्हें गंदा कर दिया ऐसी अवस्था में माता उसे फिर साफ कर देगी कियों कि वह स्वयं असमर्थ है और माता पर निर्भर है, पर यदि बच्चा बड़ा है तो फिर माता उसे नहीं नहलाती धुलाती साफ करती ऐसे ही शुद्ध सरल स्वभाव वाले पूर्ण रूपेण हुवे भक्त की भगवान स्वयं सहायता करता है। जैसे बुद्धि मती माता बालक को कोई वस्तु नहीं देगी यदि उसका मुख और तरफ है और हाथ और तरफ है ऐसे ही यदि साधक की पुकार हृदय की अन्तर गोष्टि एकान्त और शुद्ध मन से नहीं है तो परमात्मा उस की पुकार को नहीं सुनता।

जो अन्धकार भगवान ने बनाया है उसे वह स्वयं

दूर करेगा जैसे रात्री के तिमर को सूर्य अपने प्रकाश से स्वयं दूर करता है।

पाप का जब तक बदला ने दिया जावे मुख उज्वल नहीं हो सकता।

जैसे से सूर्य चोरी करके गुप्त रीति से पृथ्वी के जल को हर लेता है, खींचता है पाप करता है तो वही जल जो पाप से संचित किया गया है घने मेंघों का रूप धारण करके सूर्य के प्रकाश मान मुख को ढक देता है यह अन्धकार (पाप) सूर्य का अपना पैदा किया हुआ है, इसलिय उसे स्वयं ही दूर करना पड़ेगा अतः वह सूर्य बिजली की करक और अपनी रस्मियों से उन मेघों को छिन भिन्न करके फाड़कर वहीं पृथ्वी का जल पुनः उसे वर्षा रूप में लौटा देता है तो तब मेघों का आवरण दूर होते ही भास्कर अपने उज्वल मुख की ज्योति मान नियमों को सब ओर बखेर देता है और निश्पाप होकर चमकता है और चण भर में अन्धकार को विलीन कर देता है अतः जब तक पाप का प्रतिकार न किया जावे, जीवन नहीं चमक पाता।

भगवान ने बाहिर सूर्य को प्रकाश दिया और गुफा में हमें स्वयं प्रकाश करना होगा। दीप जलाना होगा।

अन्न तो भगवान स्वयं पैदा करता और पकाता है परन्तु रोटी हमें स्वयं बनानी पड़ती है ऐसे ही परमात्मा ने हमें अपने अपने लक्ष्य की प्राप्ति का समस्त ज्ञान और इन्द्रियों के साधन दिए हैं परन्तु ज्ञान और धर्म युक्त कर्म करना हमारे अपने अधीन हैं।

नन्हा बच्चा असमर्थ है, निश्पाप है और अपने को स्याना नहीं समझता वह अगर कीड़ा मकोड़ा मार दे तो पाप नहीं लगेगा क्यों कि वह अज्ञानी है, इसी प्रकार उन्मत व्यक्ति यदि किसी को मार दे तो उसको फांसी का दण्ड नहीं दिया जाता हां ज्ञानवान होकर पाप करे तो उसे दण्ड मिलेगा।

वेद भगवान ने अन्तिम बात कह दी "ओ३म् अग्ने नय सुपथा आदि।

य० वेद ४० (१६ जो महर्षि के भाव अर्थों में इस प्रकार है।

१) जो सत्य भाव से परमेश्वर की उपासना करते हैं।
२) यथा शक्ति उसकी आज्ञाओं का पालन करते हैं।
३) सर्वोपरि सत्कार के योग्य परमात्मा को मानते हैं।
उस का फल यह है कि उनको दयालु ईश्वर पापा चरण मार्गों से पृथक कर धर्म युक्त मार्ग में चलाके विज्ञान देकर

धर्म अर्थ, काम और मोक्ष को सिद्ध करने के लिए समर्थ करता है इससे एक अद्वितीय ईश्वर को छोड़ किसी की उपासना कदापि न करें। संध्या का समय आगया कोई सौ रुपये का ग्राहक आगया, संध्या छोड़ दी तो परमात्मा को सर्वोपरि नहीं समझा।

परमात्मा करे यह रहस्य हमारी समझ में आजावे और उसे अपने आचरण में लाकर अपने लक्ष्य कीप्राप्ति कर पावें।

ओम् शम्

* ओ३म् *

श्री महात्मा प्रभु आश्रित जी के पुस्तकों का प्राप्ति स्थान निम्न लिखित पत्ते से मिल सकती हैं।

१. वैदिक भक्ति साधन आश्रम आर्य नगर, रोहतक।
२. जवाहर ग्लास कं० कुतुबरोड, दिल्ली-६।
३. यज्ञ भवन, जवाहर नगर, दिल्ली-६।
४. देहाती पुस्तक भण्डार, चावड़ी बाजार, दिल्ली।
५. गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क, दिल्ली।
६. राजपाल एण्ड सन्ज़, कशमीरी गेट, दिल्ली।
७. सार्वदेशिक प्रेस, दरियागंज, दिल्ली-७।
८. आर्य समाज मालवीय पथ, अमृतसर।
९. श्री दर्शनानन्द प्रकाशन उद्धार
१०. आदर्श सहित्य भंडार, अजमेर।
११. ९१९०-९१, सुभाश नगर, न्यू दिल्ली-१४।

———

श्री महात्मा प्रभु आश्रित जी महाराज लिखित पुस्तकों की सूचि

पथ-प्रदर्शन	।।।)	अद्भुत किरण	-)
गायत्री-रहस्य बढ़िया	२।)	आदर्श गृहस्थी	-)
,, साधारण जिल्द	१।।।)	सेवा धर्म	।।)
,, ,, अजिल्द	१।।)	स्वप्न गुरु	।=)
कर्म भोग चक्र जिल्द	१।=)	साधना चार्ट १	।)
,, ,, अजिल्द	१=)	,, ,, २	=)
गृहस्थ आश्रम प्रवेशिका	।।)	रक्षा बन्धन ३	≡)
डरो वह बड़ा जबरदस्त है	।≡)	सप्त सरोवर	।।-)
यज्ञ रहस्य	।।।)	संभलो	१० न० पै०
सन्ध्या सोपान	।।।)	विचार विचित्र	
मनोबल	।।=)	रचना रहस्य	४० न० पै०
मन्त्र योग १म भाग	।।)	बिखरे सुमन	१)
,, ,, २य ,,	१।)	जीवन यज्ञ	।।।)
,, ,, ,, ३य	१)	चमलते अंगार	
प्रभु का स्वरूप	१)	गंगा मैया का प्रसाद	
युक्त योगी गुरु	।=)	भाग्यवान गृहस्थी	-)
अमृत के तीन घूंट	≡)	सावधान	,,
सप्त रत्न	।≡)	अब जाओ	,,
समाज सुधार	=)	अनमोल मोती	,,
गायत्री कुसुमांजलि	=)	प्रार्थना	,,
गृहस्त्र सुधार बढ़िया	२।)	दुर्लभ वस्तु	,,
,, ,, साधारण	१।।)	अद्भुत किरण	,,
,, ,, अजिल्द	१)		

जवाहर ग्लास कम्पनी, कुतब रोड, देहली।

॥ ओ३म् ॥

संभलो !

महात्मा प्रभु आश्रित जी महाराज

चैत्र २०१६

[मूल्य १० नये पैसे

महात्मा प्रभु आश्रित जी महाराज लिखित पुस्तकों की सूची

१. पथ प्रदर्शक ।।।)
२. गायत्री रहस्य बढ़िया सजिल्द २।)
३. ,, ,, साधारण सजिल्द १।।।)
४ ,, ,, अजिल्द १।।)
५. कर्मयोग चक्र सजिल्द १।=)
६. ,, ,, अजिल्द १=)
७. गृहस्थ आश्रम प्रवेशका ।।)
८. डरो वह बड़ा जबरदस्त है ।≡)
९. यज्ञ रहस्य ।।।)
१०. संध्या सोपान ।।)
११. मनो बल ।=)
१२. मंत्र योग १म भाग ।)
१३. ,, ,, २य भाग १।)
१४. ,, ,, ३य भाग १)
१५. प्रभु का स्वरूप १)
१६. युक्त योगी गुरु ।=)
१७. अमृत के तीन घूंट ≡)
१८. सप्त रत्न ।≡)
१९ समाज सुधार =)
२०. गायत्री कुसुमांजली -)
२१. गृहस्थ सुधार बढ़िया सजिल्द २।
२२. ,, ,, साधारण ,, १।।)
२३ ,, ,, अजिल्द १)
२४. अद्भुत वर्षण -)
२५. आदर्श गृहस्थी -)
२६. सेवाधर्म ।।)
२७. स्वप्न गुरु ।=)
२८. साधना का चार्ट नं० १ ।)
२९. साधना का चार्ट नं० २
३०. रक्षाबन्धन नं० ३ =
३१. सप्त सरोवर -)
३२. संभलो
३३. विचार विचित्र
३४. रचना रहस्य
३५ रचना रहस्य

छपनी हैं :—

३६. बिखरे सुमन
३७. जीवन यज्ञ
३८ चमकते अंगारे
३९ गंगा मया का प्रसाद
४०. भाग्यवान गृहस्थी
४१. सावधान
४२ अब जागो
४३. अनमोल मोती
४४. प्रार्थना
४५. दुर्लभ वस्तु
४६. अद्भुत किरण
४५. दृष्टांत प्रश्नावली १म भा
४८. ,, ,, २य भा

आचार्य सत्य भूषण जी

१. संध्या प्रभाकर
२. अध्यत्म सुधा नं० ४ (सामाजिक यज्ञ पद्धतियां)
३. अध्यत्म सुधा नं० ५ (अतिथि यज्ञ)

पुस्तकें मिलने के पते—अन्तिम पृष्ठ पर देखें।

॥ ओ३म् ॥

भूर्भुव स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि ।
धियो यो नः प्रचोदयात् ॥

संभलो !

श्रीयुत पूज्यपाद महात्मा प्रभु आश्रित स्वामी जी
महाराज के पवित्र विचारों का समन्वय
जो आपने प्रकट किये ।

सम्पादक—
सत्यभूषण वानप्रस्थी आचार्य

प्रकाशक—
अधिष्ठाता वैदिक भक्ति साधन आश्रम, रोहतक

द्वितीय वृत्ति—२०००]   चैत्र २०१६   [मूल्य -)

मुद्रक—तेज प्रिंटिंग प्रेस, हाल बाज़ार, अमृतसर ।

॥ ओ३म् ॥

प्राक्कथन

"सावधान" के बाद "सम्भलो" का नम्बर आया। "संभलो" में भक्त की परम इच्छा को बड़े रोचक और मार्मिक शब्दों में सामवेद के एक पवित्र मन्त्र के आधार पर प्रकट किया है और वह सरल, सुगम उपायों से उस कामना की पूर्ति के साधन बताये गये हैं।

आत्मिकोन्नति के अभिलाषियों को यह अनमोल ट्रैक्ट ध्यान पूर्वक पढ़ने चाहियें।

सैंकड़ों में एक भी इस पवित्र पथ का अनुगामी बन गया तो यह सब प्रयत्न सफल समझेंगे। प्रभुदेव अपनी कृपा करें।

वैदिक भक्ति साधन आश्रम

सत्य भूषण

रोहतक

आचार्य

१८-७-१९५४

ओ३म्

यदग्ने स्यामहं त्वं, त्वं वा घास्याऽहं ।
स्युष्टे सत्या इहाशिषः ॥ ऋ० ८-४४-२३

शब्दार्थ-(अग्ने) हे प्रकाश स्वरूप (यत् अहं त्वं स्याम्) जब मैं तू हो जाऊँ (वाघ) या (त्वं अहं स्यालः) तू मैं हो जाय तो (ते इह आशिषः) तेरे इस संसार के वे सब आशीर्वाद (सत्यः स्यु) सत्य सफल हो जाएं ।

फारसी के कवि ने भी कहा है :—

मन तन शुदम, तू जां शुदी
मन तू शुदम तू मन शुदी
ता कस न गोयद बाद अर्जी
मन दीगरम तू दीगरी ।

इस मन्त्र में भक्त की अन्तिम भावना है । जीवात्मा की अनादि काल से ही इच्छा चली आती है कि वह प्रभु से मिले ईश्वर और जीव दोनों चेतन सत्ताएं हैं । ईश्वर आनन्द का केन्द्र है, जीव में उसकी कमी है, अतः वह आनन्द को पाने का इच्छुक बना रहता है । परन्तु वह

बहुत दूर है।

दूरी का कारण

कोयला काला है। काला तब हुआ जब अग्नि से जुदा हुआ। जब अग्नि के संग में चला जाए तो एक दाग नहीं लगेगा, अग्नि बन जायगा। आत्मा के ऊपर जो कालक आई हुई है, परमात्मा से जुदा हो जाने के कारण है। जितने भी साधन हम करते हैं यह सब उस दूरी को हटाने के साधन हैं। यज्ञ, दान, तप, परोपकार, सत्सङ्ग आदि यह सब परमात्मा से दूरी हटाने और उसकी प्राप्ति कराने के साधन हैं।

जैसे इस शरीर के सुख के लिये हम अन्न धन आदि पैदा करते हैं। वैसे यह यज्ञ, दान, तप आदि आत्मा को सुख पहुंचाने के लिये किये जाते हैं।

प्रभु का धन्यवाद करो

सैंकड़ों हज़ारों आदमी कारावास में बन्द पड़े हैं परन्तु साधारण जेल का बन्दी बाहर से बन्द है हम भी बन्दी हैं पर अन्दर से वह सत्सङ्ग आदि से वञ्चित है। इसी प्रकार हस्पतालों में हमारे जैसे कितने व्यक्ति पड़े हैं जिनको

तरह तरह के रोगों ने बांध रखा है—वह भी सतसङ्ग आदि से वञ्चित हैं अतः कारण को शुद्ध करने के सर्व साधनों से लाचार हैं। हम भी रोगी हैं, हमें भी बहुत से रोग लगे हुये हैं परन्तु हमने रोगों को कन्धे पर उठाया हुआ है। प्रभु का धन्यवाद करो कि बन्दी और रोगी होते हुए भी परमेश्वर की दया हम पर बरस रही है और हम उसको प्राप्त कर रहे हैं और सत्सङ्ग आदि का लाभ उठा सकते हैं।

शरीर की शक्ति सीमित

इस शरीर की शक्ति बहुत सीमित है। आँख सुन्दर है। उसकी शक्ति देखने की सीमित है। दीवार के बाहर नहीं देख सकती, कान सुनते हैं परन्तु बहुत दूर की आवाज़ नहीं सुन सकते! नासिका बहुत दूर की गन्ध को ग्रहण नहीं कर सकती। जिह्वा तो इससे भी असमर्थ है। जब तक कोई वस्तु उसके निकटतम न लाई जावे, वह उसका स्वाद नहीं बता सकती। परन्तु मन पर कोई बन्धन नहीं लगा सकता, वह कोटि मीलों की दूरी पर उड़ान कर सकता है। उसकी गति बड़ी अद्भुत है। उसका जानना बड़ा कठिन है। उसको मानसरोवर कहा है।

मान सरोवर और समुद्र की समानता

इसकी यात्रा बड़ी कठिन है। लोग दूर राज पर्वतीय प्रदेशों की, बदरी नारायण आदि की, यात्रा कर आते हैं। परन्तु मान सरोवर की यात्रा जहाँ कहते हैं, हँस रहते हैं, बहुत ही कठिन है। कोई विरला ही जाता और कर पाता है। यह मन भी सरोवर है और इसको मन-सरोवर कहते हैं। इस सरोवर की यात्रा कोई विरला ही करता और वहां तक पहुंचता है। यह सरोवर की तरह बहता है और इसके अन्दर वही लहरें चलती हैं जो समुद्र में बहती हैं।

लहरें कहां उठतीं हैं ?

समुद्र में लहरें छः प्रकार उठती हैं—

१. जब पवन चलती है, उसके अन्दर तरंगें पैदा होती हैं।

२. मच्छलियां मगरमच्छ और अन्य छोटे २ जन्तु जब फुदकते हैं तो तरंगें उठती हैं।

३. जब किसी ने बट्टा फैंक दिया, तरंग पैदा हो गई।

४. जब मनुष्य उसमें नहाने लगता है, उसमें लहरें पैदा होती हैं।

५. अमावस्या और पूर्णमाशी को जब समुद्र में ज्वार भाटा आता है तो लहरें उठती हैं। पूर्णमाशी और अमावस्या की तरंगों में बड़ा भेद है। पूर्णमाशी को जल ऊपर उठता है और अमावस्या को नीचे जाता है। पूर्णमाशी को Rise (ऊपर उठना) करता है, अमावस्या को Depression (नीचे) होती है।

६. उद्गम स्थान से जहां से जल निकलता है, लहरें पैदा होती हैं और वह जल को आगे २ धकेल कर ले जाती हैं।

इसी प्रकार मन के अन्दर लहरें उठती हैं और उसे शान्त नहीं होने देतीं।

एक वह प्राण है जो हम हर समय श्वास के रूप में ले रहे हैं दूसरा वह प्राण जिससे शरीर का निर्माण हुआ। आकाश, जल, पृथ्वी आदि के साथ। तीसरा वह प्राण जो सूक्ष्म है और जीवन शक्ति देता है और आत्मा के साथ रहता है। शरीर छूटने के बाद भी साथ रहता है। यह सूक्ष्म प्राण गति देने वाला है मन को हर समय गति देता—आगे २ चलता है।

दूसरा पवन—वह जो शुद्ध करता है। प्रातः काल जब

हम उठते हैं उस समय हमारे अन्दर सात्विकता होती है। परमेश्वर का नाम लें, न लें यह सात्विकता स्वाभाविक होती है। यदि मनुष्य के अन्दर सात्विकता न आती तो मनुष्य जी नहीं सकता। वह संधिकाल है। उस समय दोनों स्वर इकठे चलते हैं।

स्वर दो हैं, सूर्य स्वर और चन्द्र स्वर। यह स्वर बारी-बारी से चलते रहते हैं। हर घण्टे के बाद स्वर बदलता है। हर बदलते समय दोनों स्वर इकठे होते हैं। उस समय सुष्मणा खुली हुई होती है। उस समय में शास्त्रकारों ने कहा कि-

१. संधिकाल में सोना पाप है।

२. उस समय न जल ग्रहण करें न अन्न ग्रहण करें।

३. उस समय प्रमेश्वर का नाम लेना चाहिये।

४. उस समय में मन की सम अवस्था होती है, उसमें रोग होता है न कोई विकार होता है। यह शुद्ध करने वाला पवन है।

कोई मनुष्य ऐसा नहीं जिसके अन्दर यह पवन संधि काल में न चलते हों।

मनःसरोवर में जो मेंडक, डड्ड मीन आदि फुदकते

हैं, वह हैं वासनाएँ। हमारे अन्दर कोई भी वासना जगे, वह गोलाकार बन जाती है। उसको वृत्ति कहते हैं। वह वृत्ति कर्म पैदा करती है और कर्म फल को, और फल फिर बीज को पैदा करती है। यह क्रम चलता ही रहता है, इस लिये हमारी वासनाएँ अनन्त हैं जो जगती रहती हैं।

समुद्र की तरह मन में भी ज्वारभाटा आता है कभी वैराग्य का और कभी उदासीनता का। जिस प्रकार समुद्र में पूर्णमाशी का ज्वार भाटा आया, तो जल की तरंगें बहुत ऊँची-ऊँचीं उठती हैं मानों वह अपने प्रियतम चन्द्र से मिलना चाहती हैं, ऐसे ही जब वैराग्य की तीव्र तरंगें उठीं तो पिया (परमात्मा) को मिलने के लिये व्याकुल हो एक महान् पग उठा लिया जैसे महात्मा बुद्ध और ऋषि दयानन्द ने किया।

अमावस्या ज्ञान की है, पूर्णमाशी वैराग्य की है। जिस प्रकार अमावस्या की रात्रि को समुद्र में ज्वार भाटा आते ही समुद्र का जल नीचे को चला जाता है, इसी प्रकार किसी घटना के उपस्थित होते ही ज्ञान सागर में जब गहरीं डुबकी लगाता है तो असलियत तक पहुँच

जाता है। ऐसी अवस्था का यह मन्त्र कहता है। अब हम समझें आंख ने देखा उसी क्षण लहर पैदा हो गई। कान ने सुना उसी दम लहर पैदा हो गई। (इसका नाम है बट्टा फैंकना)। यह बाहर के बट्टे हैं। जो मौन होकर आत्म-चिन्तन करने वाले हैं, उनको इसका पता होता है। वीर पुरुष को कोई चोट नहीं लगती, भीरू आदमी को बड़ी चोट लगती है। महात्मा बुद्ध भीरू थे तो चोट से डर गए। आवागमन के चक्र की चोट से डरते हैं। ऋषि दयानन्द भीरू था। उसको चोट लग गई। भगिनी को मरते देखा, सुमबकुम हो गये और मन ही मन में विचार करने लगे कि मेरी भी ऐसी ही गति होगी। विचार अभी मन्द नहीं हुआ था कि चचा की मृत्यु का दृष्य सन्मुख आया। जैसे भीरू शत्रु को देख भाग जाते हैं, ऐसे काल रूपी शत्रु को देख घर से भाग निकला। परन्तु हम हैं संसारी लोग जो सहस्रों को मरते देखते हैं और टस से मस न हुए। कठोर हृदय बन गए।

एक दृष्टांत–एक ब्राह्मण देवता गंगा में स्नान कर रहा था और वेद की निम्न सूक्तियां जल देवता की स्तुति में गा रहा था–

आपो हिष्ठा मयोभुवस्ता नऽऊर्जे दधातन।
महे रणाय चक्षसे ॥
यो नः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेहनः।
उशतिरिव मातरः ॥
तस्मा अरंगमाम् को यस्य क्षयाय जिन्वथ।
आपो जन यथा च नः ॥ यजु० ३६-१४-१६ ॥

जल में रहने वाली एक मीन ने सुना और हंस कर कहने लगी कितना मूर्ख है यह, जल देवता की इतनी प्रशंसा कर रहा है। हम रात-दिन चौबीस घण्टे जल में रहते हैं, इसी में हगते, मूतते हैं, हम तो नहीं जानते कि जल इतना स्तुतय है। ब्राह्मण ने सुना, सोचा कि मीन हास्य कर रही है। अपने जीवन आधार का महत्व इसे मालूम नहीं। झट उसे पकड़ा और जल के बाहर फेंक दिया। अब मीन तड़पने लगी। उसे भान होने लगा कि जल के बिना तो मैं एक क्षण भी जीवित नहीं रह सकती। सत्य कहा हैं,-

क़द्रे आफ़ीयत आं बिदानद
कि ब मुसीबते गिरफ़्तार आयद"

सलामती की कदर उसे मालूम होती है जो आपत्ति में घिर जाए। अब ब्राह्मण देवता को अनुनय विनय करने लगी, कृपा करके मुझे फिर इसी जल में डाल दो। मैं नहीं जानती थी कि यह मेरे जीवन का आधार है। मैं तो एक क्षण भी इस के बिना जीवित नहीं रह सकती। ब्राह्मण दयालु था। उसने मीन को फिर से जल में डाल दिया तो प्राण पाए।

अभी हम परमात्मा की ज़रूरत और जुदाई को नहीं समझते। बुद्धिमान को बुद्धि का महत्व तब मालूम होता है। जब भगवान उस की बुद्धि को ज़रा सा इधर उधर कर देता है अर्थात् पागल कर देता है तो लोग बट्टे मारते हैं।

धनवान् को पता तब लगता है जब दीवालिया हो जाता है,

बलवान् को पता तब लगता है जब रोगी हो जाए,

शासक को तब पता लगता है जब पदच्युत हो जाए,

इस लिये वेद भगवान् ने फरमाया :-

भरेष्विन्द्रं सुहवं हवामहें ऽहोमुचं सुकृतं दैव्यं जनम्।

अग्निं मित्रं वरुणं सातये भगं द्यावापृथिवी मरुतः स्वस्तये ॥ ऋ १०।६३।६॥

अर्थात्–हम (भरेषु) यज्ञों में (स्वस्तये) योग क्षेम और कल्याण के लिये (सुहवं) सुखप्रद (अहोमुचं) पापों से छुड़ाने वाले (दैव्यं जनम्) आस्तिक पुरुष (अग्निं, मित्रं, वरुणं) अग्नि विद्या, प्राण विद्या, और जल विद्या में निपुण (भगं) ऐश्वर्यवान् (द्यावापृथ्वी) सूर्य भूमि वत् (मरुतः) वायुवत बलवान इन्दर को (हवामहे) आदर पूर्वक बुलाते हैं।

अर्थात–हमारी आहुति पाप से छुड़ाने वाली हो। हमारे सुकृत कर्म दि्व्यता प्रदान करने वाले हो। पूर्णमाशी और अमावस्या का यज्ञ सर्व प्रकार से सुखों के देने वाले स्वर्ग को लायेगा। हम ने यह नहीं सोचा कि हमारे सुकृत कर्म दि्व्य जन्म देंगे कि नहीं! हद ब्राह्मण बनेंगे कि भंगी, अथवा चमार बनेंगे। हम क्षत्री बनेंगे, राजा बनेंगे, अथवा गोली खाने वाले दास क्षत्री बनेंगे।

अब समझें कि कौन से कारण से हमारे सुकृत कर्म फिट जाते हैं।

दूध आग पर चढ़ाने से फिट जाता है। उसके दो

कारण होंगे, एक तो दूध में मिलावट होगी अथवा पात्र अच्छा न होगा। दूध विकृत हो जाने पर नवनीत (मक्खन) तो मिलेगा नहीं, अपितु फुटियां और पानी मिलेगा। उन के गुण तो और हैं। माउलजुबन वाले दुग्ध को फिटा कर खाते है, पनीर खाते हैं। परन्तु जिस भावना से दुग्ध को दोहा और काढ़ा था, वह पूरी नहीं हुई। मक्खन प्राप्ति के लिये दुग्ध चोया और उबाला था, वह तो न मिला। वह कहां गया? दुग्ध का चोना और काढ़ना कर्म तो सुकृत था परन्तु फल अभीष्ट न मिला। कोई दोष आ गया विधि में अथवा भावना में।

इसी प्रकार अब हम देखें कि हमारा सुकृत कर्म अभीष्ट फल लायेगा कि नहीं। मनुष्य तो हम बनेंगे परन्तु "दैव्यं जनम्" दिव्य जन–आस्तिक पुरुष अलौकिक शक्ति सम्पन्न बनेंगे कि नहीं। वैश्य बनेंगे या वेश्या बनेंगे।

जिस बात का डर लगता है उसको विचारना है। हम अपने शास्त्रों, ऋषियों की बात को नहीं मानते परन्तु जब पश्चिमी विद्वान् अथवा डाक्टर की छाप उस पर लग जाती है तो उसे तुरन्त सत्य मान लेते हैं।

इससे पूर्व के उपदेश में कह चुके हैं कि डाक्टर गैट्स ने क्रोधी, दुःखी, पश्चातापी और स्वस्थ मनुष्य के श्वासों का जो उस अवस्था में निकलते हैं, परीक्षण किया और हम बतला चुके हैं कि ऐसे श्वास कितने विषैले और भिन्न २ वर्णों के होते हैं।

[देखो–लेखक का "सावधान"]

क्रोध को दबा देने वाले को श्वास रोग (अस्थमा–दमा) हो जाता है। वह कुढ़ता है उसको अन्दर २ क्रोध जलाता है। आत्मा को पतन से बचाने के लिते जो क्रोध को दबा दे, वह तो अच्छा है।

क्रोध को दबाने वाले ३ प्रकार के मानव .–

तीन प्रकार के मनुष्य क्रोध को दबाते हैं।

(१) वह जो आत्मा को पतन से बचाना चाहता है वह, क्रोध को दमन करता है विचार से। ऐसा व्यक्ति क्रोध अवस्था आ जाने को तथा अपनी इस क्रिया को प्रगट करने में लज्जा अनुभव नहीं करता।

(२) वह जो निर्बलता के कारण क्रो कोध पी जाता है। वह बेचारा कर तो कुछ नहीं सकता, अन्दर ही अन्दर घुलता जाता है, उसको दमा हो जाता है।

(३) वह जो दिखावे से क्रोध को दबा लेते हैं, उनके चेहरे से प्रगट हो जाता है। ऐसे व्यक्ति का आत्म पतन हो जाता है।

हमारे पर जो किसी का प्रभाव होता है, वह प्राण के द्वारा होता है, इसलिये प्राण विद्या सबको सीखनी चाहिये। योगी तो क्रोध की अवस्था में विचारों को भी जान जाता है। अन्तर्ध्यान होकर जब प्राणों के संस्कारों को देखता है वह अनेकों प्रकार के वर्ण हो जाते हैं, वह जाने जाते हैं, डाक्टर नहीं जान सकते। डाक्टर गैट्स ने इन्जैक्शन द्वारा ही परीक्षण किया।

प्राण विद्या

अथर्ववेद में आया कि प्राणों के द्वारा रोग दूर होते हैं:—

आवात वातु भेषजं विवातवातु यद्रप:।

प्राणों के द्वारा रोग दूर होते हैं। प्राण विद्या जानने वाले प्राणों और विचारों के इंजैकशन द्वारा रोग दूर कर देते हैं। क्षय रोग को ८ दिन में आराय हो जाये।

क्रोध चंडाल है

क्रोध चण्डाल है, यह निम्न सच्ची गाथा से स्पष्ट होगा—

महाराज विक्रमादित्य एक दिन अपने योगी गुरु के पास गए और पूछा कि मुझे महाराज विक्रमादित्य क्यों कहते हैं ? गुरु ने आदेश किया कि कल प्रातः काल जिससे सर्व प्रथम भेंट हो, उससे पूछ लेना। महाराजा की प्रातः काल एक भंगिन से भेंट हो गई। महाराजा के मन में संशय पैदा हो गया कि यह भंगिन मेरे इस मार्मिक प्रश्न का क्या उत्तर दे सकती है। न पूछा। गुरु जी के पूछने पर बताया कि भगवन् ! भङ्गिन मिली थी, उसको नीच और अबोध समझ कर मैंने नहीं पूछा। गुरु ने कहा अच्छा, अब दूसरे दिन जो पहले मिले उससे पूछ लेना। भाग्य ! दूसरे दिन भी वही भङ्गिन मिली।

अभिमान उन्नति में बाधक है

फिर न पूछा। तीसरे दिन फिर वही भङ्गिन मिली। अब राजा को पहले तो अभिमान हुआ कि मैं महाराजा और यह नीच वंशोत्पन्न भंगिन ! इस से क्या पूछूं। जब मैं नहीं जान सका तो यह कैसे जान सकेगी ?

सत्य है जब तक मनुष्य अपने आपको बड़ा समझता है, तब तक अभिमान उसकी उन्नति के मार्ग में बाधक होता है। और वह परमेश्वर के दर्शन कभी नहीं कर

सकता। परमेश्वर का साक्षात करने के लिये आवश्यक है कि उपासक अपने आप को पूर्ण रूपेण परमेश्वर के अर्पण करदे। यह माया धन सम्पत्ति, यह वस्त्रादि ही मनुष्य की बुद्धि को फेर देते हैं। जब इन वस्तुओं का अभाव हो जाये तो वह छोटे से छोटा है। गुरु नानक देव जी ने कहा।

नानक उत्तम नीच न को

अर्थात् नानक। सब जीव उत्तम हैं, नीच कोई नहीं। राजा को ऐसा प्रश्न पूछने में जो संकोच हो रहा था वह गुरु आदेश के स्मरण आते ही विलीन हो गया और भङ्गिन से पूछा! "मुझे महाराजा विक्रमादित्य क्यों कहते हैं ?

भङ्गिन ने कहा, यह प्रश्न पूछना है तो यहां से एक कोश के अन्तर पर अमुक दिशा में एक ब्राह्मणी रहती है, उससे पूछो।

महाराज जिज्ञासु बन गए

अब महाराज जिज्ञासु बन गए। ब्राह्मणी के पास पहुँचे और पूछा कि देवी! "मुझे राजा विक्रमादित्य क्यों कहते हैं।"

ब्राह्मणी ने उत्तर दिया कि क्या यथार्थ पूछना चाहते

हो ? कहा—हाँ, तो ब्राह्मणी ने कहा, यहां से कुछ कोश की दूरी पर पूर्व दिशा में एक वाटिका है जो सूखी हुई है। तुम जाओगे, वाटिका हरी भरी हो जायेगी। वह वाटिका एक राजा की है उसकी सन्तान नहीं है वाटिका के हरे भरे हो जाने पर राजा रानी तुम्हारे पास आयेंगे और सन्तान के लिए आशीर्वाद मांगेंगे। आप आशीर्वाद दे देना। वर्ष के पश्चात् उनको राजकुमार के दर्शन होंगे। उसके कुछ समझ में आ जाने पर उस बालक से पूछना।

जिज्ञासु जी उस वाटिका की ओर चल पड़े। वहां पहुंचते ही प्रभु की कृपा से वाटिका हरी-भरी हो गई। वाटिका के स्वामी राजा को पता चला, एक महात्मा ऐसे आए हैं जिनकी आशीर्वाद से सूखा चमन हरा हो गया है। राजा और रानी दोनों उस जिज्ञासु महात्मा के पास पहुंचे और विनय की कि भगवन्! हमारा गृह चमन सूखा हुआ है, वंश रूपी पेड़ मुरझा कर गिरने को है। आशीर्वाद दें कि यह तरु हरा-भरा हो जाए! जिज्ञासु ने बड़ी दयालुता से आशीर्वाद दिया। और वर्ष बीतने पर रानी को पुत्र रूपी रत्न की प्राप्ति हुई।

पुत्र बड़ा हो गया। बोलचाल करने लगा। महाराज

विक्रमादित्य की प्रश्नकली सींचे जाने की प्रतीक्षा में थी। महाराज आए और बालक से वही प्रश्न किया—"मुझे महाराजा विक्रमादित्य क्यों कहते हैं?"

बालक बोला

एक जंगल था, उसमें दो भाई, एक बहिन और एक मां रहती थी। वह सब तपस्वी थे। एक बार सात दिन पर्यन्त उन को कोई भोजन न मिला। आठवें दिन कुछ आटा आदि मिल गया, मां ने खाना बनाया और परोस कर सबके आगे धरा। अभी तपस्वी परिवार ने खाना आरम्भ नहीं किया था कि एक योगी साधु जो कई दिनों की समाधि के बाद उठा था और क्षुधा से अत्यन्त कृष हो रहा था द्वार पर आया और कहा कि अतिथि भूखा है, कुछ अन्न खिला दो।

बड़ा भाई प्रसन्नता से उछल पड़ा कि द्वार पर अतिथि भगवान् आया है। पढ़ और सुन रखा था कि जिस द्वार से अतिथि निराश अथवा तिरस्कृत जाता है, उसका सब कुछ नाश हो जाता है। झट अपनी थाली उठाई और साधु के भेंट कर दी। साधु ने वह भोग पान किया परन्तु तृप्ति न हुई।

साधु ने अभी भोजन खाना आरम्भ न किया था कि दूसरे भाई के मन में विचार आया कि मैं भी न खाऊँ, शायद साधु की पूरी तृप्ति न हो। प्रायः सब को ऐसा ही विचार आया।

अतिथि सेवा न होने से हमारे अन्तःकरण शुद्ध नहीं होते। अतिथि सेवा ही अन्तःकरण की शुद्धि की एक अचूक औषधि है। पहले अतिथि रज ले। यह भावना मन में उठी। साधु ने बड़े भाई के भाग का भोग किया परन्तु तृप्त न हुये। और मांगा, अब छोटे भाई ने अपनी पत्तल आगे धर दी। साधु ने वह भी खा ली। बहिन ने एक रोटी अपनी निकाल रखी थी, कि मेरी बारी आयेगी तो मैं भी दे दूंगी। साधु ने जब कहा अभी भूख बाकी है तो मां ने उठाया लठ और अपशब्द कहती हुई साधु की ओर लपकी, कि दुष्ट! तू मेरे सात दिन के भूखे बच्चों को भूखा मारना चाहता है। साधु आगे और वह पीछे पीछे दौड़ पड़ी। साधु जान बचा कर निकल गया। अब बालक बोला, कि तू पहला था जिसने पहले अपनी थाली अतिथि के भेंट की, इसलिये तुझे महाराज विक्रमादित्य कहते हैं। और मैं अब विलम्ब से राजकुमार बना कि जिसने आपके बाद सेवा का सौभाग्य

प्राप्त किया। यह ब्राह्मणी बहिन थी जिसने एक रोटी निकाल रखी थी और वह भंगिन हमारी मां थी जिसने आवेश में आकर लठ उठा लिया था। क्रोध चंडाल है, चण्डाल के घर वासा देता है।

अक्रोध के यह सब साधन हैं

मनु महाराज ने फरमाया, क्रोध का जीतना बहुत कठिन है। जब तक मानव पूर्व के ९ साधनों पर अधिकार नहीं पा लेता क्रोध पर विजय नहीं हो सकती।

वह साधन कौन से हैं?

सुनिये, मनु महाराज ने धर्म के दश लक्षण बताए—

धृति, क्षमा दमोऽस्तेयं शौचं इन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्॥

अर्थात् १. धृति, २. क्षमा, ३. दम, ४. चोरी न करना, ५. शौच, ६. इन्द्रिय निग्रह, ७. धी (बुद्धि), ८. विद्या, ९. सत्य और १०. अक्रोध (क्रोध न करना) यह दश धर्म के लक्षण हैं।

अब विस्तार से सुनिए

अक्रोधी बनने अथवा क्रोध पर विजय पाने के लिए

सर्व प्रथम धृति–धैर्य की आवश्यकता है। एक बात की गांठ बांध लें कि क्रोध की वंशावली में मोह, काम, लोभ और अहंकार रूपी यह बली सन्तान है। जहां धैर्य होगा वहां मोह न होगा और जहां मोह होगा वहां धैर्य न होगा। अतः क्रोध को समूल नष्ट करने के लिये सर्व प्रथम मोह का नाश कीजिए, अर्थात् अपने अन्दर धैर्य का गुण उत्पन्न कीजिए।

दूसरा गुण जिसको प्राप्त करना है, वह है क्षमा। क्षमा के भाव हैं किसी के कटु व्यवहार अथवा वचन को सहन करना, प्रतिकार का भाव अपने अन्दर न लाना। प्रतिकार का भाव आया नहीं कि क्रोध-द्वेष का अंकुर फूटा नहीं। अनुकूल वातावरण बन जाने पर भयंकर रूप धारण करके विनाश का कारण बन जायेगा। वेद ने कहा—

ऐ मनुष्यो! तुम क्षमा करना सीखो। क्षमा तब करो जब अपराधी पश्चाताप करले! "क्षमा वीरस्य भूषणम्"–

क्षमा वीर का भूषण है। अहंकार के कारण क्षमा नहीं होती। वेद में आया 'मानो वधाय हन्त्वे जिहीड़ानस्य रीरुधः। माहृणानस्य मन्यवे'॥ भावार्थ–ईश्वर उपदेश करता है कि हे मनुष्यो! जो अल्पबुद्धि अज्ञानीजन अपनी

अज्ञानता से तुम्हारा अपराध करें। तुम उसको दण्ड ही देने को मत प्रवृत्त हो, और वैसे ही जो अपराध करके लज्जित हो अर्थात् तुम से क्षमा करावे तो उस पर क्रोध मत छोड़ो, किन्तु उसका अपराध सहो और उसको यथावत् दण्ड भी दो।

तीसरा गुण है दम—इन्द्रियों का दमन करना। दमन न करेंगे तो हम संभल न सकेंगे। कामी आदमी दमन नहीं कर सकता।

चौथा गुण है अस्तेय—चोरी न करना दूसरे की चीज़ का लोभ करना भी चोरी है। आत्मा का सबसे सूक्ष्म यन्त्र संकल्प है। संकल्प से भी चोरी हो सकती है जैसे किसी की उत्तम वस्तु देखी, संकल्प हुआ कि मेरी हो जाए। द्रव्य की चोरी के इलावा विचार ज्ञान की चोरी भी होती है। चोरी का मूल कारण लोभ है। लोभ के कारण मनुष्य अस्तेय नहीं कर सकता।

पांचवां गुण है शौच—मन की अपवित्रता का कारण राग द्वेष है। जहां राग द्वेष है वहाँ सत्य की प्राप्ति नहीं हो सकती। क्रोध के कारण से पवित्रता नहीं आ सकती।

छठा गुण है इन्द्रिय निग्रह—इन्द्रियों की पड़ताल

करना। दम और इन्द्रिय निग्रह में यह भेद है कि दम के अर्थ हैं पाप वृत्ति को दबाना और इन्द्रिय निग्रह का अर्थ है पाप वृत्ति को रोकना, आने न देना। इन्द्रिय निग्रह मानो एक चौकीदार है जो द्वार पर बैठा हुआ अन्दर प्रवेश करने वाले को अन्दर जाने से रोक देता है। जैसे रात्रि को गश्ती सिपाही किसी को दूर से आते देखकर कहता है–
Who comes there ?

इन छः गुणों की प्राप्ति पर सातवें गुण धी–बुद्धि की उपलब्धी होती है। तब बुद्धि से विद्या को जो आठवां गुण है, और विद्या से सत्य की जो नवां गुण है प्राप्ति होगी। बस आखिरी मंज़िल क्रोध पर विजय अर्थात् अक्रोध की प्राप्ति स्वयं सिद्ध हो जाएगी।

अब प्रश्न यह है कि इन गुणों को धारण कैसे किया जाए ?

इन गुणों को धारण करने के लिये सबसे पहले श्रद्धा चाहिए। श्रद्धा बीज है। वेद ने फरमाया–

"श्रद्धया सत्यमाप्यते" यजु० १९-३०॥ श्रद्धा से सत्य की प्राप्ति होती है। इसलिए जहां सत्य है, वहां हम उसका आदर करें। सत्य वेद में है। वेद तो जड़ है, यदि

इस भावना से हम वेद का आदर न करेंगे तो हमारी बुद्धि भी जड़ हो जायगी।

अपने धर्म ग्रन्थों के प्रति श्रद्धा है सिखों में, श्रद्धा है मुसलमानों में। सिख लोग तो ग्रन्थ साहिब को गुरु की देह मानते हैं। उनका विश्वास है कि इसके बाद और गुरु नहीं होगा। अपने ग्रन्थ का वह इतना मान करते हैं कि यदि वह झाड़ू देंगे तो ग्रन्थ साहिब को सिर पर उठा लेंगे और झाड़ू भी देते जायेंगे और साथ २ 'एक ओंकार सत् गुरु प्रसाद......" की घोषणा भी करते जायेंगे। ग्रन्थ साहिब को ज़मीन पर नहीं रखेंगे। हम आर्यों की तो अपने वेद के प्रति इतनी श्रद्धा है कि जहां - तहां पड़े रहें परवाह नहीं, चाहे उन पर मिट्टी गर्दा पड़े चाहे दीमक खा जाए।

श्रद्धा तो मिलेगी चेतन में, जड़ में नहीं। चेतनता तो मनुष्यों में है। वह चेतनता ज्ञानियों के मस्तिष्क में रहती है। इसलिये हमें चाहिये कि हम उनका मान करें, आदर करें। परोक्ष अपरोक्ष एक समान हो। भीतर बाहर में अनुकूलता हो।

श्रद्धा को बीजो

हृदयरूपी भूमि श्रद्धा को बीजो, जैसे गेहूं बोया, उसका सुंढा बन गया, पक कर छः मास में गिर पड़ा। जड़ दूर तक भूमि में न जा सकी। जिसकी जड़ भूमि शहों तक जायेगी, वह पेड़ सदा हरा भरा रहेगा। कारण कि उस जड़ में सूक्ष्म तन्तु जो शहों तक पहुंचती है, वह शहों से जल खींचकर जड़ में और जड़ से मूलाधार (तने) में, वहां से शाखाओं में, पत्तों में, फूलों आदि में, पेड़ के अंग-अंग में पहुंचता है। इसलिये सूर्य का ताप उनको तपा नहीं सकता। तो भाईयो! इसी प्रकार जिस श्रद्धा रूपी मूलाधार की जड़ नम्रता है और नम्रता की सूक्ष्म तन्तुएं उदारता और पवित्रता रज्जू बनकर परमात्मा रूपी शहों (मूल) केन्द्रीय सरोवर तक पहुंच गई, वह वहां से अमृत रस खींच कर नम्रता में, नम्रता से श्रद्धा में और श्रद्धा कर्म रूपी पेड़ में और फिर उसके पत्तों (वासनाओं) में और फलों में पहुंच कर आनन्द रस पान करता हुआ सदा हरा भरा रहेगा और संसार के भयंकर से भयंकर ताप भी उसे नहीं तपा सकेंगे, वह सदा शान्त और हरा भरा रहेगा। प्रभु करें कि यह मर्म की बातें हमारे कानों से गुजरती हुई और हमारे हृदयों में

टिक जाएं और हम सदा सावधान रह कर जीवन का उत्थान और कल्याण करते जाएं।

ओ३म् शम्

संकलन कर्त्ता
सत्यभूषण आचार्य
वैदिक भक्ति साधन आश्रम
१३-५-५४

प्रभु आश्रित
३-५-५४ प्रातः
आश्रम

श्री महात्मा प्रभु आश्रित जी की पुस्तकें निम्न लिखित स्थानों से मिल सकती है :-

१. वैदिक भक्ति साधन आश्रम, आर्य नगर रोहतक (पंजाब)
२. जवाहर ग्लास कं० कुतुब रोड, दिल्ली-६।
३. यज्ञ भवन जवाहर नगर दिल्ली-६।
४. देहाती पुस्तक भंडार चावड़ी बाज़ार दिल्ली-६।
५. गोविन्द राम हासानन्द, नई सड़क, दिल्ली-६।
६. राज पाल एण्ड संज़, कशमीरी गेट, दिल्ली-६।
७. सार्वदेशिक प्रेस, दर्या गंज, पटौधी हाऊस, दिल्ली-६।
८. आर्य समाज मालवीय पथ, अमृतसर।
९. श्री दर्शनानन्द प्रकाशन उदगार।
१० आदर्श साहित्य भंडार अजमेर।